The International Journal of Advanced Research In Multidisciplinary Sciences
(IJARMS)
Volume 2 Issue 1, 2019

गयावाल तथा जजमानी व्यवस्था

Mk0 jkt jkuh JhokLro
एम0 ए0 पी0 एच0 डी0, सहायक प्रध्यापक, समाजशास्त्र विभाग
महेश सिंह यादव कॉलेज गया ।

जजमानी व्यवस्था जाति-प्रथा के अन्तर्गत एक सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था है, जिसके माध्यम से जातियाँ वस्तु तथा सेवाओं का आदान-प्रदान करती है। जो जातियाँ सेवाएँ तथा वस्तुएँ लेती हैं, उन्हें जजमान कहा जाता है और जो सेवाएँ तथा वस्तुएँ देती है, उन्हें कमीन या प्रजा कहा जाता है। सेवा देने के बावजूद ब्राह्मण कमीन नहीं कहे जाते। इसके माध्यम से जातियाँ एक-दूसरे पर निर्भर रहती हैं। कौन किससे सेवा और वस्तुएँ लेगा या किसको देगा, यह सुनिश्चित रहता है। यह वंशानुगत होता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जजमानी व्यवस्था को बलूटा, आया, मिलन्द आदि नामों से भी जाना जाता है।

प्रस्तुत अध्याय गयावाल तथा जजमानी व्यवस्था के विश्लेषण से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत जजमानी व्यवस्था, इसके प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण, शोषणात्मक दृष्टिकोण, पंडा-जजमानी सम्बन्ध, मिश्रित जजमानी-पौनियाँ सम्बन्ध, गयावाल-धामी सम्बन्ध तथा पुजारी-दर्शनियाँ सम्बन्ध की चर्चा की गयी है।

जजमानी व्यवस्था का वर्णन करते हुए योगेन्द्र सिंह ने कहा कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जो गाँवों के अन्तर्जातीय सम्बन्धों में पारस्परिकता पर आधारित सम्बन्ध द्वारा नियंत्रित होती है। ईश्वरन (1966)1 ने जजमानी व्यवस्था, जिसे दक्षिण भारत में मैसूर में आया कहा जाता है, के संदर्भ में कहा है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सम्पूर्ण सामुदायिक जीवन में प्रत्येक जाति को एक भूमिका निभानी होती है। इस भूमिका में आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक कार्य होते हैं।

हैरोल्ड गूल्ड ने जजमानी व्यवस्था की चर्चा अन्तर-पारिवारिक अन्तर्जातीय सम्बन्ध के रूप में की है जिसमें संरक्षकों तथा सेवाकत्र्ताओं के बीच के सम्बन्ध स्वामी तथा अधीन के होते हैं। संरक्षक स्वच्छ जातियों के परिवार के होते हैं, जबकि सेवाकत्र्ता निम्न तथा अस्वच्छ जाति के परिवार होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि जजमानी व्यवस्था एक वितरण व्यवस्था है, जिसमें उच्च जाति के भू-स्वामी परिवारों को निम्न जाति (जैसे-खाती, नाई, कुम्हार, लुहार, धोबी तथा चूहरा आदि) के लोगों के द्वारा सेवाएँ प्रदान की जाती है। सेवक जाति के लोगों को कमीन कहा जाता है, जबकि सेवित जातियों को जजमान कहा जाता है। सेवक जातियों को उनकी सेवा के बदले में नकद या वस्तु के रूप में अनाज, पशुओं का चारा, वस्त्र, दूध, दही, मक्खन आदि भुगतान किया जाता है।

जजमान शब्द का प्रयोग मूल रूप से उस आसामी के लिए किया जाता था जिसके लिए ब्राह्मण पुजारी धार्मिक पूजा व कर्मकाण्ड किया करते थे, किन्तु बाद में ये विशिष्ट सेवाओं को प्राप्त करने वाले व्यक्ति अथवा संरक्षक के लिए प्रयोग किये जाने लगे। बीडलमैन (1959)2 ने कहा है कि सेवादारों अर्थात् वस्तुएँ और सेवाएँ प्रदान करने वालों के लिए कमीन शब्द के अतिरिक्त भिन्न क्षेत्रों में अन्य शब्द जैसे पुरजन, परधान आदि भी प्रयोग किया जाता है।

जजमानी सम्बन्ध

जजमानी सम्बन्धों में धार्मिक कृत्यों, सामाजिक समर्थन तथा आर्थिक आदान-प्रदान सभी का समावेश है। सेवक जातियाँ जजमान के घर जन्म, विवाह और मृत्यु के अवसरों पर धार्मिक संस्कारिक समारोहों में कर्तव्यों का पालन करते हैं। डी. एन. मजुमदार (1958)3 ने उत्तर प्रदेश के लखनऊ जिले के एक गाँव की राजपूत जाति के ठाकुर परिवार का उदाहरण दिया है, जिसमें दस विभिन्न जातियों के परिवार जीवन चक्र-पथ के संस्कारों की पूर्ति के लिए ठाकुर परिवार की सेवा में लगे होते हैं। उदाहरण के लिए, बालक के जन्म की दावत के समय ब्राह्मण नामकरण संस्कार कराता है, सुनार नवजात शिशु के लिए स्वर्ण आभूषण उपलब्ध कराता है, धोबी गन्दे कपड़े धोता है, नाई संदेश-वाहन का कार्य करता है, खाती वह पट्टा बनाता है जिस पर बच्चे को नामकरण के लिए बिठाया जाता है, लोहार लोहे का कड़ा बनाता है, कुम्हार कुल्हड़ आदि पानी पीने तथा सब्जियाँ आदि रखने के लिए उपलब्ध कराता है, पासी भोजन के लिए पत्तलें जुटाता है तथा भंगी दावत के बाद सफाई का काम करता है। ये सभी लोग जो इस प्रकार का सहयोग करते हैं उपहार रूप में भोजन, वस्त्र और धन प्राप्त करते हैं जो आंशिक रूप से प्रथा पर, आंशिक रूप से जजमान के आर्थिक स्तर पर तथा आंशिक रूप से प्राप्तकर्ता के अनुरोध पर निर्भर करता है।

कमीन (निम्न जातियाँ) जो अपने जजमानों (उच्च जातियों) को विशिष्ट कुशलता एवं सेवाएँ प्रदान करते हैं, स्वयं भी दूसरों से वस्तुएँ तथा सेवाएँ चाहते हैं। हैराल्ड गूल्ड (1987)4 के अनुसार ये निम्न जातियाँ या तो प्रत्यक्ष रूप से श्रम के आदान-प्रदान द्वारा या धन या वस्तु के रूप में भुगतान के माध्यम से अपनी स्वयं की जजमानी व्यवस्था कर लेते हैं। मध्यम जातियाँ भी निम्न जातियों के समान ही या तो सेवाओं के बदले नकद भुगतान के रूप में या सेवाओं के आदान-प्रदान के रूप में एक-दूसरे के प्रति कर्तव्यों का पालन करती हैं।

कमीन अपने जजमानों को न केवल वस्तएँ उपलब्ध कराते हैं, बल्कि उनके लिए वे कार्य भी करते हैं जो उन्हें (जजमानों को) अपवित्र करते हैं। उदाहरणार्थ, धोबी द्वारा गन्दे कपड़ों को धोना, नाई द्वारा बालों को काटना, नायन द्वारा बच्चों को जन्म दिलाना तथा भंगी द्वारा स्नानगृह और शौच घर आदि की सफाई करना आदि। यद्यपि धोबी, नाई, लोहार आदि स्वयं निम्न जाति में आते हैं फिर भी वे हरिजनों की कमीन के रूप में सेवा नहीं करते और न ही ब्राह्मण इन निम्न जातियों को अपना जजमान बनाते हैं, तथापि जब निम्न जाति परिवार समृद्ध हो जाते हैं तब वे दूषित व्यवसाय को त्याग देते हैं और संस्कार विशेषज्ञों की सेवाएँ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और इसमें सफल भी हो जाते हैं।

जजमानी सम्बन्ध जातियों की अपेक्षा परिवारों में होते हैं। इस प्रकार राजपूत जाति का परिवार गाँव में लोहार जाति के एक विशेष परिवार के धातु के औजार प्राप्त करता है, न कि गाँव के सभी लोहार जातियों से। इसी

विशिष्ट लोहार परिवार को ही फसल पर राजपूत परिवार की फसलों में से एक भाग मिलेगा न कि दूसरे लोहार परिवारों को। लोहार और राजपूत दो परिवारों के बीच यह जजमानी सम्बन्ध स्थायी है, क्योंकि लोहार परिवार उसी राजपूत परिवार की सेवा करता रहता है जिसकी सेवा उसके पिता और दादा करते थे। राजपूत परिवार भी अपने औजार और उनकी मरम्मत उसी लोहार परिवार से कराता है जिससे उसके पूर्वज कराया करते थे। यदि सम्बद्ध परिवार में से एक परिवार समाप्त हो जाता है तो उस परिवार के वंशज उस स्थान को ग्रहण कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त प्रकरण में अगर लोहार के परिवार में अधिक पुत्र हैं जिन सभी को उनका जजमान राजपूत परिवार संरक्षण नहीं दे सकता, तो कुछ लोहार पुत्र दूसरे स्थानों पर जाकर नये सहयोगी ढूँढ लेते हैं जहाँ लोहारों की कमी होती है।

ओरेन्स्टीन (1962)5 ने माना है कि गाँव के पदाधिकारी/कर्मचारी या ग्रामीण सेवकों के परिवार (जैसे चैकीदार) गाँव में विशेष परिवारों की अपेक्षा सम्पूर्ण गाँव से जजमानी सम्बन्धों को मानते हैं। इस प्रकार चैकीदार के परिवार को गाँव के प्रत्येक भू-स्वामी कृषक परिवार से फसल के समय कुछ-न-कुछ योगदान प्राप्त होता है। गाँव के सेवक गाँव की जमीन का कर मुक्त प्रयोग भी कर सकते हैं। कुछ सेवक परिवार व्यक्तिगत परिवारों की अपेक्षा गाँव के एक हिस्से से जजमानी सम्बन्ध बनाये रखते हैं। ऐसे सेवक परिवारों को गाँव के उस विशेष भाग में रहने वाले सभी परिवारों की सेवा करने का अधिकार होता है।

जजमानी व्यवस्था के सम्बन्ध में कोलेन्डा (1963)6 ने कहा है, ''हिन्दू जजमानी व्यवस्था को भारतीय गाँवों में एक संस्था या सामाजिक व्यवस्था के रूप देखा जा सकता है, जो कि भूमिकाओं और प्रतिमानों के जाल द्वारा बनी होती है। यह जाल भूमिकाओं तथा सम्पूर्ण व्यवस्था से गुँथा होता है जिसे सामान्य सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा वैधता एवं समर्थन प्राप्त होता है।' '

जजमानी व्यवस्था में जजमान और कमीन की दो भूमिकाएँ सम्मिलित हैं। कमीन जातियाँ जजमान जातियों के लिए कुछ व्यवसायिक, आर्थिक और सामाजिक सेवाएँ प्रदान करती हैं, जिसके लिए जजमान निश्चित अन्तराल में या विशेष अवसरों पर उन्हें भुगतान करते हैं। परन्तु इस आपसी विनिमय में सभी जातियाँ आवश्यक रूप से भाग नहीं लेती हैं। उदाहरणार्थ, तेली एक ऐसी जाति है जो सामान्य रूप से इस सेवा विनिमय व्यवस्था में सम्मिलित नहीं होती। कमीन की असामियों में उसके गाँव तथा आस पास के गाँवों के परिवार सम्मिलित होते हैं। कमीन अपने जजमान के प्रति अधिकारों को दूसरे कमीन को दे सकते हैं। इस जजमान-कमीन के भूमिका सम्बन्धों में महत्वपूर्ण बात विभिन्न प्रकार की छूट रियायत देने की है, जैसे-मुफ्त भोजन, मुफ्त कपड़े, मुफ्त आवास, लगान मुक्त भूमि, आकस्मिक सहायता, मुकदमें में सहायता आदि तथा जजमानों द्वारा जीवन की विविध संकटकाल परिस्थितियों में कमीनों का संरक्षण करना भी सम्मिलित है।

विलियम वाइजर (1936)7 ने उत्तर प्रदेश के करीमपुर का अध्ययन किया तथा अपनी पुस्तक 'द हिन्दू जजमानी सिस्टम' में जजमानी व्यवस्था को एक प्रकार्यात्मक संस्था माना। उनके अनुसार यह एक समतामूलक व्यवस्था है। प्रत्येक जाति अपनी सेवा या वस्तु के लिए अन्य जाति से सेवा या वस्तुएँ प्राप्त करती है। यह व्यवस्था सामाजिक जीवन में सभी जातियों को एक-दूसरे पर निर्भर तथा अपरिहार्य बनाती है। साथ ही सभी जातियों को सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है।

ऑस्कर लेविस ने रामपुर (यू.पी.) का अध्ययन किया तथा वाइजर के विपरीत अपनी पुस्तक 'एन आउटोवायोग्राफी ऑफ ए स्वीपर' में जजमानी व्यवस्था को एक शोषणकारी व्यवस्था माना है। इनके अनुसार-

- जजमानी व्यवस्था के माध्यम से उच्च जातियाँ निम्न जातियों का शोषण करती हैं।
- कुछ जातियाँ सिर्फ सेवा लेती हैं, देती नहीं हैं। जैसे-क्षत्रिय।
- कुछ सिर्फ वस्तु लेती हैं, देती नहीं। जैसे-भंगी
- ब्राह्मण सेवाएँ देते हैं, परन्तु उन्हें कमीन या प्रजा की श्रेणी में नहीं रखा जाता है।
- जजमान कमीन को उनकी सेवाओं के अनुरूप वस्तु (अनाज, रूपये आदि) नहीं देते।
- कमीन जातियों को बेगार भी करने पड़ते हैं।

बीडलमैन (1959)8 स्पष्ट रूप से जजमान को शोषक और कमीन को शोषित मानते हैं तथा इस व्यवस्था (जजमानी) को सामन्ती व्यवस्था कहते हैं। उनका विश्वास है कि जजमानी व्यवस्था उच्च जाति के भू-स्वामी हिन्दुओं के द्वारा दबाव, नियंत्रण, वैधकरण तथा डराने धमकाने के प्रमुख साधनों में से एक है।

फ्रांसीसी समाज वैज्ञानिक लुई डयूमाँ भी जजमानी व्यवस्था को शोषणकारी तथा निम्न जातियों के हितों के विरूद्ध मानते हैं।

परन्तु जजमानी व्यवस्था को शोषण की व्यवस्था कहना तर्कसंगत न होगा। राव (1961), कोलेन्डा (1963), ओरन्सटीन (1962) तथा हैरोल्ड गूल्ड (1985) ने भी स्वीकार किया है कि जजमानी व्यवस्था को शोषक व्यवस्था कहना और इस प्रकार एक सामन्य निष्कर्ष निकालना अत्यधिक धुँधला कर देने वाला कथन होगा। हैरोल्ड गूल्ड (1987)9 ने कहा है कि जजमानी व्यवस्था का सामन्ती व्यवस्था के घटक के रूप में विश्लेषण अनुचित एवं गैर जिम्मेदारीपूर्ण तथ्य मालूम पड़ता है। आर्थिक क्रिया के किसी भी नाम के रूप में जजमानी व्यवस्था का विस्तार छोटा है। यह व्यवस्था किसी तर्क संगत आर्थिक प्रयोजन के कारण नहीं चलती, बल्कि इसलिए स्थिर रहती है क्योंकि यह सामाजिक प्रस्थिति को बनाये रखने में महत्वपूण होती है तथा सामाजिक अन्तक्रिरया के इन स्वरूपों का भी अनुरक्षण करती है जो ग्रामीण हिन्दूवाद के सफल प्रचलन के लिए आवश्यक है। जजमान मूलतः एक आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से समरूप वर्ग नहीं है, बल्कि एक धार्मिक-आर्थिक संवर्ग है जो कि भारतीय सभ्यता में अपूर्वता से अपनायी गयी है। जजमान और सेवक जातियों के बीच बन्धन समान धार्मिक-आर्थिक सम्बन्धों का आनन्द लेना है, न कि सामज में धन और शक्ति के स्रोतों के प्रति सामान्य सम्बन्ध का आनन्द लेना।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जजमानी व्यवस्था में जजमान की प्रस्थिति न तो जमींदार वर्ग से मेल खाती है और न ही किसी प्रबल जाति से और न यह किसी विशेष सामाजिक समूह में सदस्यता पर निर्भर करती है, बल्कि भूमि के स्वामित्व या भूमि से उत्पादन (किसी भी साधन) पर निर्भर करती है। मेयर (1960), माथुर (1958) और पोकॉक (1963) की भी मान्यता है कि भूमि का स्वामित्व भारत में जातीय मुक्त रहा है, जिसका अर्थ है कि किसी भी रूप में जजमान की स्थिति स्थापित करने के लिए जिन साधारण साधनों की आवश्यकता होती है। वे जाति संस्तरण में हर जाति के सदस्यों को प्रावैधिक रूप में उपलब्ध होते हैं। हैराल्ड गूल्ड (1987)10 के इस कथन को मानते हुए कि जजमान की प्रस्थिति एक सामाजिक श्रेणी न होकर एक धार्मिक-आर्थिक श्रेणी है,

यह कहा जा सकता है कि जजमानों को शोषक (एक सामाजिक वर्ग के रूप में) नहीं माना जा सकता। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में जजमानों द्वारा कमीन को दिया जाने वाला धन या अनाज इतना कम है कि कमीन को अन्य साधनों से अपनी आय बढ़ाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। दूसरी ओर जजमानी स्तर कभी भी भूमि के आधार पर रईस होने तक सीमित नहीं रहा (यहाँ तक कि पुरानी व्यवस्था में भी नहीं)। विभिन्न जातियों के लोगों को जजमान बनने के अवसर थे। लेकिन जजमान होना और वर्तमान प्रभावशाली राजनैतिक व्यवस्था का अंग होना स्वयं में सहावसानी नहीं थे। राजनीतिक संस्तरण में सदस्यता तो केवल शक्तिशाली स्थिति प्राप्त करने का साधन थी जिससे जजमान होने में सहायता मिलती थी। यह एकमात्र साधन कभी नहीं रहा।

जजमान होने का अर्थ था रूढ़िवादी हिन्दू होना जिसकी मूल्य व्यवस्था कुछ विशिष्ट सेवादारों अथवा सेवाकत्र्ता जातियों को नियुक्त करना आवश्यक मानती थी। जमींदार होने का अर्थ था शासक वर्ग का सदस्य होना।11 जजमान कमीन का शोषक नहीं था, यद्यपि जमींदार शीर्षक हो सकता था। जजमान होने की इच्छा रखना न तो सामन्ती स्थिति प्राप्त करने की इच्छा है और न ही कमजोर वर्ग के शोषण की इच्छा है, अपितु उन संस्कारों व कर्मकाण्डों का पालन करने तथा उस जीवन पद्धति की इच्छा है जिसमें अपवित्रता से दूर रहना आवश्यक होता है।

परम्परा से पूरा भारतवर्ष गयावालों के अनेक वंशजों के बीच टुकड़े-टुकड़े बाँट लिया गया है। साधारणतया जब कोई तीर्थयात्री अपने घर से निकलता है, उसी समय वह अपने गयावाल पंडा अथवा पुरोहित के नाम जानता है। गयावालों का जाति-संगठन पुरोहित जजमान-प्रणाली को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक कायम रखने में एक प्रभावकारी यंत्र-रचना का काम करता है। इस प्रकार की यंत्र-रचनाएँ हैं- (क)वंशगत पदनामों तथा उपनामों का परम्परा से प्राप्त करना तथा (ख) गयावालों के अपने अधिकार में आने वाले सभी जजमानों की वंशगत तालिका-सम्बन्धी विवरणों के खाते को संभालना तथा उसे अपने पास रखना।

वंशगत पदनाम सम्पत्ति की तथा जजमानों की पैतृक वंशावली को नियमित करता है। इसके साथ-साथ वांशिक पदनाम गयावालों के पेशाओं को भी स्पष्ट करता है। इस प्रकार जजमानों को अपने आनुवांशिक पंडाओं की पहचान करने में वे विशेष सहायक होते हैं। यदि किसी पुरूष उत्तराधिकारी के अभाव में कोई वंश समाप्त होता है तो उसकी पदवी सम्पत्ति के एक अंश के रूप में दूसरे सपिंड सम्बन्धी द्वारा हस्तगत की जाती है। वह अपने वंश की पदवी के अलावा ली गई पदवी को भी धारण कर लेता है। दूसरे शब्दों में, वंश की पदवी वह है जिसके द्वारा जजमान पंडों की पहचान करते हैं। सैद्धान्तिक रूप से यह कभी लुप्त नहीं होती है। इस प्रकार वंशनाम के अन्तर्गत पंडा-जजमान का सम्बन्ध हमेशा बना रहता है।

दो वंश नामों के मिश्रण के अनेक उदाहरण पाये गये हैं। जब बड़ीहा वंश लुप्त हो रहा था तो उस वंश की एकमात्र जीवित स्त्री ने अपनी बेटी के लड़के (नाती) को गोद ले लिया, जो कटेरियार वंश का था। जब वह मर गई तो वह लड़का कटेरियार तथा बड़ीहा दो वंश नामों का हकदार हो गया। दो वंश नामों के इस अंगीकरण से वह इन दो वंशों के अधिकार के अन्दर आने वाले सभी जजमानों के साथ संसर्ग करने का अधिकारी हो गया। इसी तरह

महतो वंश के दूसरे सूचक ने अपनी स्त्री के पिता की सम्पत्ति का हक हस्तगत किया तथा महतो और भट्ट दो व्यवसायिक नामों से पुकारा जाने लगा।

आम तौर पर पितृवंशीय वंश नाम अंगीकृत वंश नाम से अधिक महत्वपूर्ण होता है। लेकिन अंगीकृत वंश नाम जब किसी उच्चे वंश या परिवार का होता है तब पितृवंशीय वंश नाम उसके सामने गौण हो जाता है। कभी-कभी तो व्यावसायिक कामों के लिए उसे छोड़ भी दिया जाता है। ऐसी जानकारी एक ठाकुरी पदवी वाले गयावाल से प्राप्त हुई। प्रारम्भ में वह गयाव वंश का था, परन्तु बाद में जब उसने अपनी माँ के पिता की सम्पत्ति को प्राप्त किया तब उसने अपने पितृवंशीय वंश नाम को बिल्कुल छोड़ दिया तथा अंगीकृत पदवी ठाकुरी से पुकारा जाने लगा।

गयावालों की पचपन व्यावसायिक वंश-पदवियों का उल्लेख एल. पी. विद्यार्थी ने किया है और इन पदवियों का विभाजन छह आधारों पर किया है, जिसे निम्न तालिका में दर्शाया गया हैः-

तालिका -6.1

गयावालों की व्यावसायिक वंश-पदवियों का विभाजन

जातियों का नाम या पदवी	ब्राहमण जातियों का नाम या पदवी	स्थान के नाम से सम्बन्धित पदवी	समाजिक तथा धार्मिक दफ्तर के नाम से सम्बन्धित पदवी	व्यक्तिगत गुणों से सम्बन्धित पदवी	अज्ञात उत्पत्ति से सम्बन्धित पदवी
अहीर	भट्ट	बड़ीहा	अगीनवार	बरीक	बुहीया
बेलदार	बिढ़ल	डीहडर	भईया	भोगता	देवनार
चैधरी	गोसांई	दुमलिया	चारीयारी	गयाब	ढेरो
गुप्ता	झंगर	कटेरियार	ढीकरेश्वरी	गेलीवर	हाल
महतो	मिसिर	कोहडउरी	ढ़ाकुरी	हूंदा	पोलाद
सेबा	पांडे	यहारी	गरई	जज	
	पाठक	पर्वतिया	गुर्दा	करी	
	उपाघ्याय		हादा	खरखरका	
			कोलकर	कुट्टी	
			महता	मेहरवार	
			मउआर	नकफोफा	
			नायक	पसेरा	
			राजा खिजुआर	तईया	
			टाटक		

इस तालिका में यह स्पष्ट है कि गयावाल की छह वंश पदवियाँ बिहार में वैश्य जाति द्वारा गृहीत पदवियों के नाम पर हैं, जबकि नौ पदवियाँ ब्राहमण वर्ण की अनेक जातियों के नाम पर हैं। सात वंश नाम किसी गाँव या क्षेत्र के नाम पर रखे गये हैं, जहाँ से उनके वाहक पूर्वज शहर में आए। पन्द्रह वंश नाम जाति-समूह या

तीर्थ-स्थान के संगठन के अन्तर्गत किसी धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दफ्तरों के अधिकारी के नाम पर हैं। तेरह वंश नाम निजी विशेषताओं के नाम पर हैं। इसी विशेषता पर वंश का नाम पड़ा और उस नाम से प्रसिद्ध हुआ, जबकि पाँच वंश नाम ऐसे हैं, जिसकी उत्पत्ति अज्ञात है।

गयावाल व्यावसायिक पदवियों की उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ? यह समस्या इतनी जटिल है तथा इसके सम्बन्ध में इतनी कम जानकारी है कि कोई भी संतोषजनक ऐतिहासिक अर्थ संभव नहीं जान पड़ता। फिर भी उपलब्ध जानकारियों के आधार पर तीन काल्पनिक अर्थ बतलाए जा सकते हैं। पहला, ये पदपियों गयावाल-वंशों तथा परिवारों द्वारा कुछ समय बीतने पर एक वंश अथवा परिवारों को दूसरे से भिन्न साबित करने के लिए अपनायी गयी हैं। इस प्रकार के नामों का चयन अधिकतर सम्बन्धित इकाई द्वारा किया जाता है। कुछ लोगों ने इन नामों को जजमानों की जाति या क्षेत्र के समूह से लिया, जिसका वे जजमानी करते थे। कुछ अन्य लोगों ने दूसरे समूहों से अपनी पहचान अपनी निजी या पारिवारिक विशेषताओं के आधार पर की। सामान्य गयावाल व्यावसायिक पदवियों की उत्पत्ति तथा विकास को समझाने के लिए यह विचार रखते हैं।

दूसरी व्याख्या के अनुसार, जो अनेक नागरिकों के द्वारा दी जाती है, विभिन्न जाति की पदवियाँ अथवा गाँव के नाम से ली गई पदवियाँ गयावालों के प्रारम्भिक लगाव को बतलाती हैं। वैष्णव-आन्दोलन के अन्तर्गत तथा तीर्थ स्थान के रूप में गया के बढ़ते हुए महत्व से यह बिल्कुल संभव है कि उनका स्थानान्तरण हुआ हो या गया में अभी भी अपनी प्रारम्भिक जाति या गांव के नामों को रखते हुए उन्होंने पुजारी के पेशे को ग्रहण कर लिया हो।

तीसरी व्याख्या इन दोनों व्याख्यानों का मिश्रण है। यह व्याख्या एल.पी. विद्यार्थी द्वारा दी गयी है। उनके अनुसार अपने वंश का नाम करने में गयावालों ने पहले नाम के द्वारा अपनी जाति तथा गांव का लगाव बनाये रखा और बाद में जब उनका वंश छोटी-छोटी इकाईयों में बंट गया और जब व्यवसायिक सुविधा के लिए एक इकाई या परिवार को दूसरी इकाई या परिवार से संम्पर्क करने की आवश्यकता महसूस हुई तो उन्होंने संभवतः अपने जजमानों से सम्बन्धित दूसरे प्रकार के नामों को अपनी ही निजी तथा पारिवारिक विशेषताओं के साथ चुन लिया। दूसरे प्रकार का नामकरण अभी भी प्रचलित है। उदाहरणार्थ, गोलीवार नाम एक बंदूक वाले व्यक्ति को दिया गया। वह व्यक्ति बंदूक दागने में बड़ा निपुण था। उसके परिवार ने भी इस नाम को अपना लिया। यह नाम उनकी दो पीढ़ियों तक चलता रहा। फिर बाद में उसके परिवार वालों के द्वारा अपने पुरानी ही पदवी को पुनः रखने की बात निश्चित की गई।

वंश नाम का चाहे जो कुछ भी ऐतिहासिक महत्व रहा हो इसका व्यापारिक ताः व्यवसायिक महत्व स्पष्ट है। यह एक यंत्र-रचना प्रस्तुत करता है, जिसके द्वारा पंडा-जजमान संबंध जो पूरे हिन्दू समाज में फैला है, पहचान में आता है, याद किया जाता है और नियमित होता है।

गयावालों का जजमानों पर उचित अधिकार दिलाने वाली दूसरी यंत्र-रचना 'खाता' है। इसमें जजमानों तथा उनके गांव के नाम लिखे जाते हैं। जिस प्रकार गयावालों के वंश या एक सम्मिलित परिवार दो या अधिक भागों में विभक्त होता है, उसी प्रकार अधिकार का क्षेत्र तथा आश्रयदाताओं की संख्या भी खाता की पृष्ठ संख्याओं के अनुसार विभाजित कर ली जाती है। जब कभी किसी तीर्थयात्री के सम्बन्ध में झगड़ा होता है तो यह खाता एक

प्रस्तुत-सूची का काम करता है। इस प्रकार गयावालों का खाता उनकी एक बहुत ही महत्पूर्ण सम्पत्ति है तथा यह उनके 'पवित्र राज्य' के कार्य को नियमित करने में सहायक होता है कुछ सपिंडसम्बन्धियों के 'धार्मिक राज्य' के उत्तराधिकार के समय, जो वास्तव में खाता का एक अंश से दूसरे वंश में हस्तान्तरण ही है या किसी सम्मिलित परिवार के विभाजन की अवस्था में सम्बन्धित रिश्तेदार कम-से-कम अपने धनी जजमानों को इन परिवर्तनों की सूचना दे देते हैं। भूतकाल में यह अपने अधिकार के भीतर स्वयं गयावालों द्वारा घूम-घूमकर या अपने प्रतिनिधियों को भेजकर करवाया जाता था। अब वे इस कार्य को चिट्ठी द्वारा या फोन द्वारा भी करते हैं।

इन सभी प्रबन्धों के बाद भी प्रत्येक वर्ष कुछ ऐसे तीर्थयात्री गया आते हैं, जिनका जजमानी सम्बन्ध किसी पंडाके साथ तय नहीं रहता है। एक प्रबन्ध के अनुसार इस प्रकार के तीर्थयात्री पूरी जाति के जजमान समझे जाते हैं तथा उन्हें विष्णु-आश्रय नामक एक गयावाल संस्था द्वारा सभी धार्मिक और लौकिक सेवाएँ दी जाती है। ऐसे तीर्थयात्रियों से जो आमदनी होती है उससे सामान्य कल्याण किया जाता है। इस प्रकार के तीर्थयात्रियों के लिए एक अलग ही खाता रखा जाता है तथा तीर्थयात्री को यह कहा जाता है कि वह जिस किसी पंडा को चाहे अपना अस्थायी प्रबन्ध हस्तांतरित कर सकता है। यह अनिर्धारित तीर्थयात्रियों को लेकर होड़ करने वाले पुरोहितों के बीच होने वाले झगड़ों को अन्त करने के समाधानों में से एक है। भूतकाल में इस प्रकार के अनिर्धारित तीर्थयात्रियों के प्रश्न को हल करना आसान था परन्तु वर्तमान काल में अनिर्धारित तीर्थयात्रियों को लेकर होने वाली समस्याओं के निराकरण में यह प्रबन्ध आपसी मतभेदों तथा दूसरे आधुनिक विकासों के चलते निष्फल हो गया है।

पंडा-जजमान सम्बन्ध जो अनेक कत्र्तव्यों पर आधारित है, विशेष रूप से दो अवसरों पर व्यक्त होता है। पहला, जब अपने दल या प्रतिनिधियों के साथ कोई पंडा अपने जजमान के यहाँ जाता है और दूसरा, जब एक जजमान अपने सम्बन्धियों तथा सेवकों के साथ गया में श्राद्ध करने या विष्णुपद के मंदिर में विशेष पूजा करने आता है।

एक पंडा का किसी जजमान के पास स्वयं जाने अथवा अपने किसी प्रतिनिधि के भेजने के बहुत से अभिप्राय हैं। जजमानों में गया की तीर्थयात्रा करने के लिए धार्मिक चेतना का स्फुरण करना, पुराने जजमानों के सम्बन्ध को पुनः नवीन करना तथा उनसे भेंट लेना या जमीन या राज्य के वाकियात को हस्तगत करना, जिसे उसने भेंट स्वरूप पाया हो। धनी जजमानों के पास जाकर अपने किसी घरेलू आर्थिक कष्ट में मदद माँगना, नये जजमान खोजना तथा उन सभी जजमानों को निर्देश देना, जो गया तीर्थयात्रा में आना चाहते हैं।

पहले जब आवागूमन के साधन सीमित थे तथा यात्रा में होने वाले कष्ट अनेक थे, अपने जजमानों के यहाँ जाने के लिए गयावालों को बहुत लम्बी-चैड़ी तैयारी करनी पडती थी। एक धनी पंडा जो सिर्फ धनी जजमानों के यहाँ ही जाता था, हमेशा अनेक सेवकों तथा संगीतज्ञों के साथ चलता था। वह अपने साथ अनेक निजी देवी-देवता (ठाकुरजी) भी ले जाता था, जिनका रास्ते में तथा जहाँ कहीं वह ठहरता था, पूजा करना एक विशेष बात होती थी। वह अपने साथ सभी प्रकार की धार्मिक वस्तुएँ भी अपने साथ लिए चलता था। जैसे-कम्बल, रेशमी वस्त्र, पत्थर तथा ताँबे की मूर्तियाँ, धार्मिक पुस्तिकाएँ, चित्र तथा विशेषकर अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, जैसे

विष्णुपद का प्रसाद (आशीर्वाद का चिन्ह)। इस प्रकार की वस्तएँ अमीर तथा गरीब जजमानों को भेंट दी जाती थीं।

जजमानों के यहाँ जाते समय पंडा प्रायः किसी धनी जजमान के यहाँ ही ठहरता था, जो उसकी सभी प्रकार की आवभगत तथा सम्मान कर सके। वह जहाँ कहीं भी ठहरता था, धार्मिक सभा का आयोजन होता था, उसके ठाकुरजी की विस्तारपूर्वक पूजा की जाती थी, गीत गाये जाते थे, गया-महात्म्य की कहानियाँ सुनाई जाती थीं तथा विष्णुपद से लाया गया प्रसाद सभा में उपस्थित लोगों में बाँटा जाता था। अपने वास की अवधि में जो अनके सप्ताह से लेकर अनेक महीनों का हो सकता था, सभी प्रकार के स्वादिष्ट भोजन, सुख-सुविधाएँ तथा मनोरंजन आदि से धनी जजमान उसका सम्मान करता था। जब पंडा अपने दल के साथ प्रस्थान करता था तो उसे जवाहरात, कपड़े, घोड़े और वहाँ तक कि उसकी यात्रा में सहायता करने को नौकर भी भेंट स्वरूप देकर उसे राजसी विदाई दी जाती थी।

अपनी जजमानी -यात्रा में पंडा विशेष रूप से धनी जजमानों से मिलने को इच्छित रहता है लेकिन वह साधारण जजमानों से मिलना नहीं भूलता है। अपनी यात्राओं के अलावे वह अपने प्रतिनिधियों के समूह को उनसे मिलने, उनसे गया तीर्थयात्रा करने का आग्रह करने तथा फिर उन्हें सुरक्षापूर्वक ले जाने के अभिप्राय से भेजता है। इन सभी कार्यों के लिए उसके पास अनेक श्रेणी के नौकर, चल अधिकारियों का समूह तथा प्रदर्शक रहते हैं।

प्राचीन काल में ऐसी छोटी तथा बड़ी यात्रा प्रचलित थी। ये यात्राएँ तीन से आठ महीनों तक की होती थीं। पंडा तथा उसके अधिकारीगण बहुसंख्यक जजमानों तथा अनेक भेंट की वस्तुओं के साथ गया लौटता था। इसके अलावे वह पड़ोस के राजपथों पर भी स्वेच्छा से आने वाले तीर्थयात्रियों को उपकृत करने के लिए ठहर जाता था।

यातायाता के साधनों के विकास के बाद गयावाल के प्रतिनिधियों द्वारा की जाने वाली यात्रा अब बिल्कुल पुरानी पड़ गयी। अब तीर्थयात्रियों को साथ लेकर पहुँचाने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है और अब तीर्थयात्री भी नहीं चाहते हैं कि पंडा के प्रतिनिधयों की मण्डली उनको साथ लेकर चलने के लिए प्रतीक्षा करे। अब वे भारत के किसी कोने से सुविधापूर्वक गया आ सकते हैं। इस विकास की वजह से पंडाओं के प्रतिनिधियों का मुख्य कार्य अब गया के समीपवर्ती रेलवे स्टेशन या बस अड्डे तक ही सीमित हो गया है। वे गया आने वाली रेलगाड़ियों में भी यात्रा करते हैं तथा अपने मालिकों के तीर्थयात्रियों की पूछताछ एवं चुनाव करते हैं।

अभी भी पंडा लोग कभी-कभी जजमानी-यात्रा करते हैं। इसके लिए उन्हें बहुत कम तैयारी करनी पड़ती है। वे अपनी सुविधानुसार कुछ सप्ताहों में ही अकेले जगह-जगह जजमानों के यहाँ जाते हैं और गरीब तथा अमीर जजमानों से मिलने वाली भेंट लेकर वापस आ जाते हैं।

दूसरे प्रकार का जजमानी-कर्तव्य तब देखा जाता है, जबकि जजमान और उनके सम्बन्धी श्राद्ध करने के लिए गया आते हैं। पंडा उनके ठहरने, भोजन पकाने तथा विधि-क्रियात्मक व्यापार करने के लिए सभी संभव प्रबंन्ध वर्षों पुराने स्नेह के साथ करता है और वह पंडा जजमानों के पुरखों के गया आगमन तथा उनके अच्छो गुणों के बारे में बतलाता है और यह कहता है कि वे किस प्रकार उसे बहुत-सा दान देते थे। इस प्रकार जजमान एक घरेलू वातावरण में अपने आनुवंशिक पारिवारिक पंडा की देखभाल में सभी क्रिया-विधि को सम्पन्न करता है। संगीत से जजमानों का मनोरंजन किया जाता है जिसके लिए गयावाल प्रसिद्ध हैं। वह संकीर्तन, कथा तथा

धार्मिक मण्डलियों जैसे दूसरें प्रकार के भक्तिपूर्ण पाठों में जाता है और उसमें भाग लेता है। उसे धार्मिक सिनेमा देखने की भी सलाह दी जाती है जो सिनेमा घरों में चलते रहते हैं। पवित्र केन्द्रों का भ्रमण करने तथा दूसरे प्रकार के सहकारी व्यापारों में भाग लेने के अतिरिक्त कुछ जजमान दूसरे प्रकार के धार्मिक कार्य-कलापों में मदद देना पंसद करते हैं। जैसे मंदिरों का निर्माण और मरम्मत, ब्राह्मण तथा भिखारियों को खिलाना, साधुओं तथा पुरोहितों को भेंट देना तथा कुछ धार्मिक संस्थाओं को अर्थदान देना आदि। इस प्रकार के कार्य से यह विश्वास किया जाता है कि जजमानों को अतिरिक्त आध्यात्मिक पुण्य मिलेगा। साथ ही पंडों के सम्मान को भी बढ़ाएगा। पंडाओं को अपने जजमानों द्वारा गया में किये गये विशेष प्रकार के धार्मिक कार्य तथा अपने लिये असाधारण प्रकार की भेंट मिलने से गर्व होता है। गयावाल जाति तथा गया के नागरिक भी बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं तथा राजकुमारों के राजशाही आगमन को बहुत दिनों तक याद रखते हैं, जिन्होंने गया में अपने पुरखों के नाम पर सभी प्रकार की भेंट चढ़ाई तथा धार्मिक अनुष्ठान किया।

पंडा तथा जजमानों के बीच इस प्रकार के घनिष्ठ सम्बन्ध तथा निरन्तर सम्पर्क ने दोनों के जीवन को प्रभावित किया। जिस प्रकार गयावालों के जजमान दूसरे तीर्थस्थानों के तथा स्थानीय और क्षेत्रीय कई प्रकार के पुरोहितों के सम्पर्क में आते हैं, उसी प्रकार गयावाल भी हमेशा एक ही जजमान के सम्पर्क में नहीं रहते। वे सालों भर किसी-न-किसी जजमान के सम्पर्क में रहते हैं तथा उनका जीवन व्यक्त रूप से उनलोगों से प्रभावित होता रहता है। गयावाल धनी जजमानों के जीवन से विशेष रूप से प्रभावित दीख पड़ते हैं। कीमती भेंट उनके और भी ठाठ-बाट से जीवन व्यतीत करने में सहायक होती है।

गयावालों ने अपने जजमानों को पर्याप्त धार्मिक और लौकिक सेवाएँ देने तथा अपने संगठन को सुचारू पूर्वक चलाने के लिए मिश्रित जजमानी-पौनियाँ सम्बन्ध स्थापित किया जो अर्द्ध आनुवांशिक हैं। इन जाति विशेषज्ञों (नाई, माली, नौकर आदि) तथा गयावालों के बीच का सम्बन्ध केवल मालिक और नौकर का ही नहीं है। अनेक सामाजिक-आर्थिक कारको ं से उनलोगों का आपस में घना सम्बन्ध हो गया है। इनमें से कुछ नौकर पारिवारिक संगठन के अंग बन गये हैं और गयावालों के जीवन को प्रभावित भी किया है।

गयावाल परिवार को पुरोहिती तथा पुरोहिती-जीवन में अनेक जाति विशेषज्ञों की सहायता की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम जजमानों से अपना सम्पर्क बनाये रखने तथा रेलवे स्टेशन और बस अड्डों पर उनका स्वागत करने के लिए सेवकों की आवश्यकता होती है। फिर जब जजमान ठहरा दिये जाते हैं तो उनकी सेवा करने के लिए अनेक नौकरों तथा दासियों की आवश्यकता होती है। अपने ही घरेलू कामों तथा आराम के लिए भी उसे अनेक सेवकों की आवश्यकता होती है।

इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गयावाल नौकर जाति विशेषकर कहार और धानुक जाति के अनेक परिवारों को नियुक्त करता है। इन परिवारों को नगद तो सिर्फ नाम मात्र के दिये जाते हैं, लेकिन अनेक दूसरी सुविधाएँ जैसे मुफ्त खाना, मुफ्त कपड़ा, मुफ्त रहना, अपने मालिक तथा उसके जजमान के घर पर होने वाले अनुष्ठान के समय विशेष पुरस्कार तथा अपने ही घरों पर होने वाले अनुष्ठानों के समय आर्थिक मदद आदि की है। किसी भी गयावाल परिवार से नौकर जाति के अनेक परिवार घुल-मिल जाते हैं तथा सम्बन्ध को कई पीढ़ी तक बनाये रखते हैं।

चयनित उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि उनके यहाँ नौकर कितने पीढ़ी से काम कर रहे हैं? उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में जो सूचना दी उसे निम्न तालिका में दर्शाया गया हैः-

तालिका -6.2

आपका नौकर कब से आपके यहाँ काम कर रहा है?

पीढ़ी	आवृति	प्रतिशत
चार पीढी से	98	49
तीन पीढ़ी से	62	31
दो पीढ़ी से	26	13
एक पीढ़ी से	14	07
कुल योग	200	100

इस तालिका से यह परिलक्षित होता है कि 98 (49%) उत्तरदाताओं के यहाँ चार पीढी से, 62 (31%) के यहाँ तीन पीढ़ी से, 26(13%) के यहाँ दो पीढ़ी से तथा 14 (7%) के यहाँ एक पीढ़ी से उनका नौकर काम कर रहा है।

गया श्राद्ध करने के लिए जो तीर्थयात्री गयावाल पंडा के यहाँ आते हैं, उन्हें धार्मिक स्थलों पर ले जाने, और तर्पण तथा पिण्डदान कराने के लिए पुरोहित की आवश्यकता होती है। गयावाल लोग स्वयं यह कार्य नहीं करते हैं इसलिए वे पुरोहित नियुक्त करते हैं। ये पुरोहित ब्राह्मण जाति के होते हैं। हैमिलटन बुचानन ने यह स्पष्ट किया है कि पुरोहित शाकद्वीपीय, कनौजिया, श्रोत्रिय तथा मैथिल जाति के ब्राह्मण होते हैं। गयावाल लोग दो तरह के पुरोहित नियुक्त करते हैं। पहला स्थायी पुरोहित तथा दूसरा अस्थायी पुरोहित। स्थायी पुरोहित को नियमित वेतन दिया जाता है। इसके अलावे उसे मुफ्त कपड़े तथा प्रसंगवश आर्थिक उपहार दिये जाते हैं। आचार्य के परिवार का अपने मालिक के परिवार के साथ औपचारिक सम्बन्ध होता है। लेकिन पड़ोस के अन्य परिवारों की तुलना में उनका सामाजिक संसर्ग ज्यादा होता है। पारिवारिक स्तर पर मिलने-जुलने, भेंट, आमंत्रण तथा पारिवारिक सहायता का आदान-प्रदान सामान्य रूप से होता है। वैसे गयावाल, जिनके पास अधिक तीर्थयात्री आते हैं, दस से अधिक स्थायी पुरोहित रखते हैं। दूसरी ओर वैसे गयावाल, जिनके यहाँ कम तीर्थयात्री आते हैं, एक ही स्थायी पुरोहित रखते हैं। पुरोहित एक ही मालिक के यहाँ जीवन भर काम करता है। कुछ पुरोहित परिवार तो ऐसे हैं, जो कई पीढ़ियों से एक ही मालिक के यहाँ काम कर रहे हैं। पुरोहितों को जजमानों का विशिष्ट कार्य कर देने के लिए भी गयावालों द्वारा पैसा दिया जाता है।

पितृपक्ष के समय तीर्थयात्रियों की संख्या काफी बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप स्थायी पुरोहितों के अलावे गयावाल लोग अस्थायी पुरोहित नियुक्त करते हैं। इन अस्थायी पुरोहितों के रूप में किसे रखा जाता है? इस जिज्ञासा की शांति के लिए अन्वेषिका ने अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछा। उत्तरदाताओं से इस सम्बन्ध में जो जानकारी मिली उसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया हैः-

तालिका -6.3

आप अस्थायी पुरोहित के रूप में किसे रखते हैं?

विचार	**आवृति**	**प्रतिशत**
तीर्थयात्री द्वारा लाया गया पुरोहित	07	3.5
स्थायी पुरोहित द्वारा लाये गये सम्बन्धी	99	49.5
गयावाल के यहाँ स्वयं आये पुरोहित	94	47.0
कुल योग	200	100.0

इस तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 99 (49.5 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि स्थायी रूप से नियुक्त पुरोहित अपने परिवारजनों तथा सम्बन्धियों को पितृपक्ष मेला के समय अपने मालिक के पास लाते हैं और उनके मालिक उन्हें अस्थायी पुरोहित के रूप में रखते हैं। 94 (47 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने कहा कि आस-पास के ब्राह्मण पितृपक्ष के समय स्वयं उनके पास यह आग्रह लेकर आते हैं कि उन्हें अस्थायी पुरोहित के रूप में रख लिया जाए। ऐसे ब्राह्मणों को गयावाल पितृपक्ष के समय अस्थायी पुरोहित के रूप में रख लेते हैं। सिर्फ 7 (3.5 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि गया श्राद्ध करने के लिए आने वाले कुछ तीर्थयात्री अपने साथ अपने पुरोहित को भी लाते हैं। गयावाल पंडा की अनुमति से इन पुरोहितों को भी अस्थायी आचार्य के रूप में रखा जाता है। पर ये पुरोहित सिर्फ अपने जजमान का ही श्राद्ध कार्य सम्पन्न कराते हैं। अस्थायी पुरोहितों को गयावाल द्वारा वेतन नहीं दिया जाता है, बल्कि श्राद्ध कार्य सम्पन्न कराने में हुई आमदनी में से कुछ प्रतिशत दिया जाता है। इसका निर्धारण गयावाल तथा अस्थायी पुरोहितों की आपसी सहमति से होता है।

खाता, जिसमें जजमानों क नाम, पता तथा उनके वंशजों के नाम अंकित होता है, गयावालों की सम्पत्ति होती है। इसकी देखभाल के लिए गयावाल लोग मुंशी जी रखते हैं। ये मुंशी जी प्रायः कायस्थ जाति के होते हैं। तीर्थयात्रियों को लेकर जब कोई विवाद होता है, तो ये मुंशी जी अपने गयावाल मालिक की उचित सहायता करते हैं। मुंशी जी को वेतन दिया जाता है। साथ ही वे धनी गयावाल परिवार के अनेक दूसरे लाभों का भी उपभोग करते हैं। खाता की देखभाल के अलावे वे अपने मालिक के घरेलू तथा व्यावसायिक कामों को भी करते हैं। मुंशी जी अपने मालिक के यहाँ कितने दिनों से काम कर रहे हैं इस बात की जानकारी हासिल करने की कोशिश अन्वेषिका द्वारा की गई। इस सम्बन्ध में चयनित उत्तरदाताओं से प्रश्न पूछा गया। उनके द्वारा दी गई सूचना को निम्न तालिका में दर्शाया गया हैः-

तालिका -6.4

मुंशी जी आपके यहाँ कितनी पीढ़ी से काम कर रहे हैं?

पीढ़ी	आवृति	प्रतिशत
चार पीढी से	85	42.5
तीन पीढ़ी से	63	31.5
दो पीढ़ी से	35	17.5
एक पीढ़ी से	17	8.5
कुल योग	200	100

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 85 (42.5 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के अनुसार चार पीढ़ी से मुंशीजी उनके यहाँ काम कर रहे हैं, जबकि 63 (31.5 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि उनके यहाँ मुंशी जी दो पीढ़ी से काम कर रहे हैं। सिर्फ 17 (8.5 प्रतिशत) उत्तरदाता ऐसे हैं जिनके यहाँ एक पीढी से मुंशी जी काम कर रहे हैं।

नाई, कुम्हार, माली तथा पिण्ड बेचवा, जो चावल के आटे का पिण्ड बनाकर बेचता है, पौनिया कहलाता है। पर्व-त्योहार, जन्म से लेकर मृत्यु संस्कार तक तथा पितृपक्ष मेला के समय विशेष आमदनी हेतु ये पौनिया अपनी सेवाएँ गयावाल को देते हैं। इन पौनियों को वार्षिक भुगतान मिलता है। लेकिन इन दिनों इन्हें अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग भुगतान गयावाल द्वारा किया जाता है। पौनिया के एक या दों परिवार गयावाल परिवारों के समूह को अपनी सेवाएँ देते हैं। ये प्रायः आनुवांशिक सम्बन्ध के आधार पर अपनी सेवा देते हैं। ये लोग गयावालों तथा गया श्राद्ध करने के लिए आये हुए जजमानों को, जिन्हें उनकी सेवा की जरूरत होती है, सेवा देते हैं। दोनों प्रकार की सेवा के लिए गयावाल भी भुगतान करता है। फिर भी यदि जजमान चाहे तो पौनिया को भी चीज भेंट में दे सकता है। पौनिया जितना कार्य करता है, उससे और अधिक सेवा की आवश्यकता यदि गयावाल को होती है तो वह पौनिया को और अधिक प्रबन्ध करने के लिए कहता है। ऐसी स्थिति का सामना प्रायः नाई को करना पड़ता है। पितृपक्ष मेला के समय तीर्थयात्रियों की संख्या काफी बढ़ जाती है। इन तीर्थयात्रियों के विधि-क्रियात्मक मुण्डन के लिए बड़ी संख्या में नाई की आवश्यकता होती है। पारिवारिक नाई ऐसे समय में अपने सम्बन्धियों को बुला लेता है जो मुण्डन का कार्य करते हैं।

रामशिला तथा प्रेतशिला पहाड़ी गया के दो ऐसे धार्मिक स्थल हैं, जहाँ के मालिक धामी हैं। इस जाति से भी गयावालों के व्यवसायिक सम्बन्ध हैं। श्राद्ध करने के लिए जो तीर्थयात्री गया आते हैं वे यम, उनके नारकीय कुत्तों, अनेक देवी-देवताओं तथा भूत-प्रेतों के नाम पर पिण्ड देने के लिए रामशिला तथा प्रेतशिला पहाड़ी पर आते हैं। इन स्थानों पर विधि-क्रियाएँ धामी द्वारा सम्पन्न करायी जाती है। इन पवित्र केन्द्रों में चढ़ायी गयी भेंट के तीन-चैथाई हिस्सों के हकदार धामी होते हैं। बाकी बचे हिस्से साझेदारी का होता है।

धामी लगभग सत्ताईस परिवारों की एक जाति है जो प्रेतशिला पहाड़ी के नीचे के क्षेत्र में रहती है। धामियों का प्रदेश जो गया शहर से लगभग पाँच मील दक्षिण है, एक पक्की सड़क के द्वारा जुड़ा हुआ है। वस्तुतः ये पुरोहितों के एक तटस्थ, गरीब तथा सीधे-साधे समहे हैं, जो ग्रामीण जीवन में पले हैं। वे भूत-प्रेत के नाम से अर्पित तीर्थधामों से सम्बन्धित हैं। इस आधार पर ये अपने को प्रेतीया ब्राह्मण भी कहते हैं। एक ब्राह्मण पुरोहित

से जो आशा की जाती है, धामी उससे बहुत ही कम हैं। वे माँस, शराब तथा ताड़ी का सेवन करते हैं। गयावालों की भाँति वे विधि क्रियात्मक आचरण, सुबह की पूजा आदि पर ध्यान नहीं देते हैं। विधवा-विवाह का भी प्रचलन इनमें पाया जाता है। प्रायः भारतवर्ष में उच्ची जातियों के बीच इस प्रकार की रीति नहीं पायी जाती है।

स्थानीय नागरिकों तथा गयावालों का कहना है कि धामी गैर ब्राह्मण पुरोहित है। कुछ लोग उन्हें फूल बेचने वाली जाति की शाखा मानते हैं, जो गया के धामी नामक टोले में रहती है। धामी को धानुक से आया हुआ भी माना जाता है। धानुक नीची जाति के खेतिहर हैं। सभंवतः आजकल के धामी प्राचीन काल में उनके पुरोहित थे। तीर्थ स्थानों में पे्रतों की पूजा तथा विधि-क्रिया पर धामियों का एक मात्र अधिकार उनके प्राचीन गैर ब्राह्मण पुरोहित होने की बात को और भी पुष्ट करता है।

आज यह जानने का कोई साधन नहीं है कि किस प्रकार यह ब्राह्मणीय तथा गैर ब्राह्मणीय सुलह विकसित हुई जो गया-श्राद्ध की विधि-क्रिया से सम्बन्धित हो गयी। ओ. मैली का विचार है कि यह अत्यधिक धर्मनिष्ठ ब्राह्मणीय तथा आदिमजातीय पौरोहित्य के बीच की, जो जंगल से भरी पहाड़ियों पर आदिमजातीय दैत्य-पूजा की विधि-क्रिया कराने का काम करती थी, बहुत पुरानी सुलह है। इस प्रकार पुरोहिती के ये दो प्रकार एक ही मिश्रण के विकास के दो स्तर प्रदर्शित करते हैं। गयावाल पुरोहित चतुरता के साथ साधनों तथा धार्मिक विद्वानों आदि के ससंर्ग से सफलतापूर्वक आगे बढ़ते गये, परन्तु धामी तटस्थ, निर्धन तथा सीधे-साधे होने के कारण पीछे ही रह गये। बाद में पहाड़ी तीर्थयात्रा में श्राद्ध के सामान्य कार्यक्रम में गयावालों द्वारा शामिल लिये जाने पर उसी से अपने को संतुष्ट रखने लगे। धामी अभी भी जजमान बनाते हैं तथा खाता रखते हैं, किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं होता। वे अपना स्वतंत्र पुरोहिती व्यवसाय भी करते हैं। इस प्रकार के प्रयत्नों से उनका गयावालों से मतभेद हो जाता है तथा स्थानीय अदालतों में इस प्रकार के अनेक मुकदमें भी पेश किये गये हैं। जो भी हो, तीर्थयात्रियों के लिए, जो श्राद्ध करने आते हैं, दोनों पुरोहितों का अपने-अपने स्थानों में समान महत्व है। यह एक परम्परा-सी बन गई है कि धामियों का सम्मान किया जाए तथा पहाड़ी तीर्थस्थानों में भेंट दिये जाएँ। इस तरह गयावालों के ही समान धामी लोग भी तीर्थयात्रियों के लिए पवित्र तथा महत्वपूर्ण है। वे सभी विधि-क्रियात्मक मिश्रण के अभिन्न अंग हैं।

गयावाल पुजारी प्रतिदिन सैंकड़ों दर्शनियों के संसर्ग में आते हैं। विशेष पवित्र दिनों में तथा किसी पवित्र मेला अथवा ग्रहण के अवसर पर दर्शनियों की संख्या हजारों की होती है। दिन के समय विष्णुपद मंदिर में पूजा करने के लिए जो आते हैं, उनका सत्कार करना और उनसे भेंट लेने का अधिकार समान रूप से सभी गयावालों को है। एक गयावाल लड़का प्रतिदिन ब्रहम मुहूर्त में उठता है, स्नान करता है, चन्दन-तिलक लगाता है और पुजारियों की विशेष पोशाक पहनकर दर्शनियों की खोज के लिए विष्णुपद मंदिर पहुँचता है। मंदिर के द्वार के पास उठे हुए चबूतरे पर वे एकत्रित होते हैं। यह स्थान गयावाल लड़कों का एक अड्डा-सा बन गया है। यहाँ वे दर्शनियों के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। जिस पुजारी की नजर पहली बार किसी दर्शनार्थी पर पड़ती है और जो फुर्ती से उसकी पोशाक या इस इस तरह की दूसरी विशेषताओं द्वारा उनकी पहचान को घोषित करता है, वह उसके लिए तीर्थस्थान में पुजारी का काम करने का हकदार हो जाता है। कभी-कभी किसी दर्शनार्थी पर उचित अधिकार स्थापित होने के बाद भी तीर्थस्थानों के पुजारियों के बीच आपसी झगड़े तथा मतभेद हो जाते हैं।

परन्तु शाम के समय यह अधिकार केवल भईया वंशवालों का होता है। वंश के प्रत्येक परिवार का एक प्रतिनिधि निश्चित समयानुसार शाम को मंदिर आता है, शाम की विशेष पूजा का खर्च देता है तथा अपने निर्धारित समय में पूजा करने वालों द्वारा दी गई भेंट का अधिकारी होता है।

साधारणतया गयावाल दर्शनियोंं के पुजारी के काम को पसंद नहीं करते हैं। इसका कारण क्या है? यह जानने का प्रयास अन्वेषिका द्वारा किया गया है। इस सम्बन्ध में अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से प्रश्न किया गया और उत्तरदाताओं द्वारा जो जानकारी उपलब्ध करायी गयी, उसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया हैः-

तालिका -6.5

आप दर्शनियों के पुजारी के काम को क्यों पसंद नहीं करते?

कारण	आवृति	प्रतिशत
अल्प आमदनी	75	37.5
थोड़ा भेंट	24	12.0
लम्बी प्रतीक्षा	66	33.0
व्यर्थ की प्रतियोगिता	35	17.5
कुल योग	200	100.0

इस तालिका से यह परिलक्षित होता है कि 75 (37.5 प्रतिशत) उत्तरदाता अल्प आमदनी की वजह से दर्शनियों के पुजारी के रूप में काम करना पसंद नहीं करते, जबकि 24 (12 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया कि इस काम के बदले में थोड़ी भेंट मिलती है इसलिए वे इसे नापसंद करते हैं। 66 (33 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि इस कार्य में लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस वजह से वे इस काम को नापसंद करते हैं। 35 (17.5 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के अनुसार इस काम में व्यर्थ की प्रतियोगिता होती है। इस वजह से वे इसे पसंद नहीं करते हैं।

पहले गयावाल श्राद्ध-पुरोहित के रूप में काफी सम्पन्न थे। इस कारण वे इस कार्य पर उतना ध्यान नहीं देते थे। केवल लड़के तथा गरीब घराने के कुछ वयस्क ही इस काम को किया करते थे। परन्तु अब गयावालों के आर्थिक पतन नेे बहुसंख्यक गयावाल युवकों को यह कार्य करने को बाध्य कर दिया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों में पंडा-जजमानी सम्बन्ध, मिश्रित जजमानी-पौनिया सम्बन्ध, गयावाल-धामी सम्बन्ध तथा पुजारी-दर्शनिया सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ईश्वरण, आरः ट्रेडिशन एण्ड इकोनॉमी इन विलेज इण्डिया, शैट्लेज एण्ड केगन पौल लि. लंदन, 1966, पृ. 41
2. वीडलमैन, थामस ओ.: ऐ कम्परेटिव एनालिसिस ऑफ द जजमानी सिस्टम, मोनोग्राफ फार द एसोसिएशन फार एशियन स्टडीज, न. 8, न्यूयार्क, 1959, पृ. 6-7
3. मजुमदार, डी. एन.: कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इण्डियन विलेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1958
4. गूल्ड, हैरोल्ड ए.: ए जजमानी सिस्टम ऑफ नार्थ इण्डिया:इट्स स्ट्रक्चर, मैग्निट्यूड एण्ड मिनिंग हिज बुक द हिन्दू कास्ट सिस्टम, चाणक्य पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1987, पृ. 169-70
5. ओरेन्स्टीन, हेनरीः एक्सप्लाइटेशन और फंक्शन एन द इन्टरप्रेटेशन ऑफ जजमानी, साउथ वेस्टर्न जर्नल ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी , वाल्यूम 18, 1962, पृ. 310-14
6. कोलेण्डा, पावलीन: टुवर्डस ए मॉडल ऑफ द हिन्दू जजमानी सिस्टम, ह्यूमन ऑरगेनाइजेशन , वाल्यूम 22, न. 1, स्प्रिंग 1963, पृ. 11-31
7. वाइजर, विलियम एच.: द हिन्दू जजमानी सिस्टम, लखनऊ पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1936
8. वीडलमैन, थामस ओ: वही
9. गूल्ड, हैरोल्ड ए.: वही, पृ. 176-177
10. वहीं, पृ. 177
11. वहीं, पृ. 185